ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

तिथि–10 अगस्त 2021
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, १२२
युगाब्द-५१२२, अंक-१४१, वर्ष-१४
श्रावण विक्रमी २०७८ (अगस्त 2021)

मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

ऋषि दयानन्द

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

दृतेदृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ –यजुः० ३६। १८

व्याख्यान–हे अनन्तबल महावीर ईश्वर! (दृते) हे दुष्टस्वभावनाशक! विदीर्ण कर्म अर्थात् विज्ञानादि शुभ गुणों का नाशकर्म करनेवाला मुझको मत रक्खो (स्थिर मत करो), किन्तु उससे मेरे आत्मादि को उठाके विद्या, सत्यधर्मादि शुभ गुणों में सदैव स्वकृपासामर्थ्य ही से स्थिर करो (दृꣳह मा) हे परमैश्वर्यवन् भगवन्! धर्मार्थकाममोक्षादि तथा विद्या विज्ञानादि दान से अत्यन्त मुझको बढ़ा। (मित्रस्येत्यादि०) हे सर्वसुहृदीश्वर, सर्वान्तर्यामिन्! सब भूत प्राणिमात्र मित्र की दृष्टि से यथावत् मुझको देखें। सब मेरे मित्र ही हो जाये, कोई मुझ से किञ्चिन्मात्र भी वैरदृष्टि न करे। (मित्रस्याहं चेत्यादि) हे परमात्मन्! आपकी कृपा से मैं भी निर्वैर होके सब भूत प्राणी और अप्राणी चराचर जगत् को मित्र की दृष्टि से स्वआत्म-स्वप्राणवत् प्रिय जानूँ। अर्थात् (मित्रस्य चक्षुषेत्यादि) पक्षपात छोड़के सब जीव देहधारीमात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर वर्तमान करें। अन्याय से युक्त होके किसी पर कभी हम लोग न वर्त्तें। इस परम धर्म का सब मनुष्यों के लिए परमात्मा ने उपदेश किया है। सबको यही मान्य होने योग्य है।।३।।

सम्पादकीय

शिक्षा के बन्द द्वार ...?

संसार में जबसे मानवीय सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ है, तभी से शिक्षा मानव जीवन का अभिन्न अंग बनकर मानव शरीर प्राप्त प्राणी को मानवीय गुणों से परिपूरित कर अलंकृत करती है। विशेषत: हमारे इस गौरवशाली राष्ट्र में जहाँ पर शिक्षा प्राप्त करने के लिए तप:पूर्ण ब्रह्मचर्य आश्रम की श्रेष्ठतम व्यवस्था करोडों वर्षों तक अविच्छिन्न रूप में अनवरत चलती रही है। यह एक भिन्न विषय है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था क्या और कैसी थी किन्तु जो भी है और जैसी भी है, कुछ तो उपादेय है ही, चाहे मात्र आजीविका तक शिक्षा सीमित हो गयी हो, तब भी जीवन के लिए आजीविका (रोजी-रोटी) भी एक अनिवार्य अंग तो है ही। हम सभी भली-भांति जानते हैं कि यदि आजीविका की ठीक-ठीक व्यवस्था न बन पाये तो जीवन में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूपी पुरुषार्थ चतुष्टय की तो छोडिए शरीरिक आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं होती। परन्तु दुर्भाग्य यह कि- मार्च 2020 से बन्द हुए शिक्षा के द्वार अगस्त 2021 तक भी न खुले और न ही अभी निकट में खुलने के कोई संकेत ही नहीं मिल पर रहे हैं। कोरोना महामारी के अनिश्चित अंधकार पर लाखों करोड़ों रूपयों की वैक्सीन लगने-लगवाने के उपरान्त भी जय-विजय मिलने के कोई संकेत न शरीर विज्ञानी विशेषज्ञ दे पा रहे हैं, न सरकार, न वैक्सीन बनाने-लगवाने वाले व्यवस्थापक? तब भी देश का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है जो पूर्णरूप से खुल न गया हो, एकमात्र शिक्षा के द्वारों को छोड़कर। देशवसियों को ऐसा लगने लगा है, जैसे कोरोना महामारी चीन से निकलकर सीधे विद्यालयों/महाविद्यालयों में ही भर्ती हो गई हो और विद्यालयों/महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों को छोडने को तैयार ही न हो, अपितु सरकारों को चुनौती देकर बैठ गयी हो कि- विद्यालय खोलकर तो दिखाओ!

देशभर में सभी राजकीय (सरकारी) विभाग-उपविभाग खुल चुके हैं, व्यापारिक प्रतिष्ठान खुल चुके हैं, उद्योग-धन्धे चल रहे हैं, यहाँ तक कि- मानवीय श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की जड़े खोदने वाले नशे के कारोबार, सर्वाधिक हानिकारक मांस-मछली का व्यापार; प्राय: सरकार समर्थक आन्दोलन, धरने-प्रदर्शन, सैर-सपाटे, शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... पिकनिक क्या क्या नहीं खुल गए, जहाँ लोग दुधमुंहे बच्चों से लेकर किशोरवय बालक/बालिकाओं के साथ कोरोना रोधी नियमोपनियमों की धज्जियाँ उड़ाते हुए धूम रहे हैं। मैदानों में, उपवनों (पार्कों) में खेल रहे हैं, गलियों में खूब हुड़दंग मचा रहे हैं। बिना मास्क मिल रहे हैं, दो गज दूरी तो छोड़िए दो फिट की भी दूरी का पालन नहीं हो पा रहा है, अर्थात् नियम-अनुशासन सब जब ताक पर रख ही दिया गया है। तब जीवन में सर्वाधिक अनुशासन का पाठ पढ़ाने के लिए प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित शिक्षा के द्वार विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों को पूर्व से अधिक नियम, उपनियम लगाकर, पूर्व से अधिक अनुशासन में नियोजित कर कक्षाओं के भिन्न-भिन्न दिन निश्चित कर क्यों नहीं खोला जा रहा है? हमारे इस विशाल भू-भाग वाले देश में घरों से, गली-मुहल्लों से अधिक खुली जगह निश्चित रूप से शिक्षणालयों के पास ही उपलब्ध है, अध्ययन कक्ष भी विशाल ही हैं, फिर भी यह प्रतिबन्ध क्यों? पुनरपि एक विचार यह भी किया जा सकता है कि- जिन प्रान्तों, जिलों, नगरों एवं महानगरों में ''कोरोना महामारी'' के लक्षणों वाले रोगी मिल रहे हैं, खतरा अधिक है, वहाँ के शिक्षणालय बन्द रखे जा सकते हैं, किन्तु जहाँ कोरोना वायरस शून्य क्षेत्र है वहां क्या विपत्ति है? कुछ सरकारों का 9वीं, 10वीं, 11वीं, 12वीं के विद्यालयों को खोलने का निर्णय स्तुत्य-सराहनीय है। परन्तु जब 9, 10, 11 एवं 12वीं के विद्यालय खोले जा सकते हैं, तब कक्षा एक से पांचवीं के प्राथमिक, 6 से 8 तक के पूर्व माध्यमिक एवं महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों को खोलने में कौन सी बाधा है? **''शिक्षा का अधिकार'' मानव मात्र का मौलिक एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकार है।** अत: केन्द्र एवं प्रान्तीय सरकारों को अविलम्ब शिक्षा संस्थानों को यथोचित दिशा-निर्देशों, नियमोपनियामें के सशक्त पालन की सुव्यवस्था करते हुए शीघ्रातिशीघ्र खोलना ही चाहिए! अन्यथा जितने भी दिनों तक शिक्षा के द्वार बन्द रहेंगे, उतनी हानि ही हानि सम्पूर्ण देशवसियों को, भावी पीढ़ी को उठानी पड़ेगी। हम सभी पाठकों को चाहिए कि- हम अपने-अपने स्थान से विद्यालयों को खोलने की मांग पूरी दृढ़ता से उठाएँ! जन-संवाद में भी और सोशल मीडिया के विभिन्न प्लेटफार्मों पर भी; कि शिक्षा के द्वार अब खुलने ही चाहियें! अब विलम्ब नहीं।

-आचार्य हनुमत् प्रसाद, अध्यक्ष, आर्य महांसघ।

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित दो दिवसीय सत्रों व सभा से सम्बन्धित नवीन जानकारी सभा की बेवसाईट- **www.aryanirmatrisabha.com** पर उपलब्ध है। अत: आप वहाँ से जानकारी ले सकते हैं। यह पत्रिका भी प्रत्येक मास दिनांक 10 को सभा की बेवसाईट पर डाल दी जाती है अत: पत्रिका को पढ़ने के लिए साईट के लिंक- www.aryanirmatrisabha.com/हिन्दी में पत्रिका पर जाएं।

25 जुलाई- 22 अगस्त 2021 श्रावण ऋतु- वर्षा

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
	उपाकर्म पर्व 15 अगस्त	15 अगस्त स्वतंत्रता दिवस				श्रवण कृष्ण द्वितीया 25 जुलाई
धनिष्ठा कृष्ण तृतीया 26 जुलाई	शतभिषा कृष्ण चतुर्थी 27 जुलाई	पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण पंचमी 28 जुलाई	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण षष्ठी 29 जुलाई	रेवती कृष्ण सप्तमी 30 जुलाई	अश्विनी कृष्ण अष्टमी 31 जुलाई	भरणी कृष्ण अष्टमी 1 अगस्त
कृतिका कृष्ण नवमी 2 अगस्त	रोहिणी कृष्ण दशमी 3 अगस्त	मृगशिरा कृष्ण एकादशी 4 अगस्त	आर्द्रा कृष्ण द्वादशी 5 अगस्त	आर्द्रा कृष्ण त्रयोदशी 6 अगस्त	पुनर्वसु कृष्ण चतुर्दशी 7 अगस्त	पुष्य शुक्ल अमावस्या 8 अगस्त
आश्लेषा शुक्ल प्रतिपदा 9 अगस्त	मघा शुक्ल द्वितीया 10 अगस्त	पू० फाल्गुनी शुक्ल तृतीया 11 अगस्त	उ० फाल्गुनी शुक्ल चतुर्थी 12 अगस्त	हस्त शुक्ल पंचमी 13 अगस्त	चित्रा/स्वाती शुक्ल षष्ठी 14 अगस्त	विशाखा शुक्ल सप्तमी 15 अगस्त
अनुराधा शुक्ल अष्टमी/नवमी 16 अगस्त	ज्येष्ठा शुक्ल दशमी 17 अगस्त	मूल शुक्ल एकादशी 18 अगस्त	पूर्वाषाढ़ा शुक्ल द्वादशी 19 अगस्त	उत्तराषाढ़ा शुक्ल त्रयोदशी 20 अगस्त	श्रवण शुक्ल चतुर्दशी 21 अगस्त	धनिष्ठा शुक्ल पूर्णिमा 22 अगस्त

23 अगस्त-20 सितम्बर 2019 भाद्रपद ऋतु- शरद

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
शतभिषा कृष्ण प्रतिपदा 23 अगस्त	पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण द्वितीया 24 अगस्त	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण तृतीया 25 अगस्त	रेवती कृष्ण चतुर्थी 26 अगस्त	अश्विनी कृष्ण पंचमी 27 अगस्त	भरणी कृष्ण षष्ठी 28 अगस्त	कृतिका कृष्ण सप्तमी 29 अगस्त
कृतिका कृष्ण अष्टमी 30 अगस्त	रोहिणी कृष्ण नवमी 31 अगस्त	मृगशिरा कृष्ण दशमी 1 सितम्बर	आर्द्रा कृष्ण दशमी 2 सितम्बर	पुनर्वसु कृष्ण एकादशी 3 सितम्बर	पुष्य कृष्ण द्वादशी 4 सितम्बर	आश्लेषा कृष्ण त्रयोदशी 5 सितम्बर
मघा कृष्ण चतुर्दशी 6 सितम्बर	पू० फाल्गुनी कृष्ण अमावस्या/प्रतिपदा 7 सितम्बर	उ० फाल्गुनी शुक्ल द्वितीया 8 सितम्बर	हस्त शुक्ल तृतीया 9 सितम्बर	चित्रा शुक्ल चतुर्थी 10 सितम्बर	स्वाती शुक्ल पंचमी 11 सितम्बर	विशाखा शुक्ल षष्ठी 12 सितम्बर
अनुराधा शुक्ल सप्तमी 13 सितम्बर	ज्येष्ठा/मूल शुक्ल अष्टमी 14 सितम्बर	पूर्वाषाढ़ा शुक्ल नवमी 15 सितम्बर	उत्तराषाढ़ा शुक्ल दशमी 16 सितम्बर	श्रवण शुक्ल एकादशी 17 सितम्बर	धनिष्ठा शुक्ल द्वादशी/त्रयोदशी 18 सितम्बर	शतभिषा शुक्ल चतुर्दशी 19 सितम्बर
पूर्वाभाद्रपदा शुक्ल पूर्णिमा 20 सितम्बर					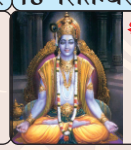 श्री कृष्णचन्द्र जयन्ती भाद्रपद कृष्ण अष्टमी 30 अगस्त	

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	08 अगस्त	दिन-रविवार	मास-श्रावण	ऋतु-वर्षा	नक्षत्र-पुष्य
पूर्णिमा	22 अगस्त	दिन-रविवार	मास-श्रावण	ऋतु-वर्षा	नक्षत्र-धनिष्ठा
अमावस्या	07 सितम्बर	दिन-मंगलवार	मास-भाद्रपद	ऋतु-शरद	नक्षत्र-पू.फाल्गुनी
पूर्णिमा	20 सितम्बर	दिन-सोमवार	मास-भाद्रपद	ऋतु-शरद	नक्षत्र-पूर्वाभाद्रपदा

गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-२४

- आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर

संसार के सभी मत-पन्थ सम्प्रदायों में किसी ना किसी रूप में इष्टापूर्त कर्म न्यूनाधिक का मात्रा में पायें जाते हैं। इष्ट अर्थात् अभिलषित, जिसकी चाहत या अभिलाषा हो या जिनका विधान किया गया है और पूर्त वह कर्म जिसकी आवश्यकता हो। सभी मत-पन्थों ने कुछ कार्यों का विधान किया है और सभी मतपन्थों के लोग आवश्यक कार्यों को समझकर करते ही हैं जैसे **अन्नदानादि कर्म।**

सनातन संस्कृति में इष्ट कर्मों की एक लम्बी परम्परा है। इससे पूर्व कि हम इष्ट और आपूर्त के सम्बन्ध में आपके समक्ष विवेचन रखे ऋषि दयानन्द के शब्दों में इसे समझना आवश्यक है अपने यजुर्वेद भाष्य के पन्द्रहवें अध्याय के चौवनवें मन्त्र के भाष्य में (इष्टापूर्ते) **इष्टं सुखं विद्वत्सत्करणमीश्वाराराधनं संगतिकरणं सत्यविद्यादिदानं च पूर्तं पूर्णं बलं ब्रह्मचर्यं विद्यालंकरणं पूर्णं यौवनं पूर्णं साधनोपसाधनं च।** अर्थात् इष्ट सुख, विद्वानों का सत्कार, ईश्वर का आराधन, अच्छा संग करना और सत्यविद्यादि का दान देना यह इष्ट और पूर्ण बल, ब्रह्मचर्य, विद्या की शोभा, पूर्ण युवा अवस्था, साधन और उपसाधन यह सब पूर्त।

संसार में जीव मात्र की अभिलाषा उसकी चाहत तो अन्ततः सुख ही है संसार में कौन है जो सुख नहीं चाहता अर्थात् सभी सुख चाहते हैं। अतः संसार में सबका इष्ट सुख है। इस सुख की प्राप्ति के लिए जो आवश्यक अपितु अत्यावश्यक है वह है 'यज्ञ' क्योंकि कहा भी गया है- **स्वर्ग कामो यजेत्।** सुख की इच्छा रखने वाले यज्ञ करें। यज्ञ कर्म का नाम ही इष्टि या इष्ट कर्म है यथा दर्शेष्टि, पौर्णमासेष्टि, पुत्रेष्टि आदि किसी कामना के साथ किया हुआ यज्ञ इष्टि है। यज्ञ का वृहत्तर रूप देव पूजा है, दान है और संगतिकरण है। लौकिक पक्ष में जहाँ विद्वानों का सत्कार। (सम्मान, सेवा, सुश्रुणा, आज्ञा) देव पूजा है वहीं अध्यात्म के क्षेत्र में ईश्वर की आराधना को देव पूजा कहा गया है। यह देव पूजा जहाँ लोक में उत्तरोत्तर सर्वांगीण विकास कर सुख सृजना करती है वहीं अध्यात्म में यह हमें ईश्वर की कृपा उसकी अनुकम्पा का पात्र बना देती है। उसकी भक्ति अर्थात् उसकी आज्ञा के पालन में तत्पर कर देती है। इसी से मोक्षमार्ग खुलकर परमसुख अर्थात् समाधि की सिद्धि करता है।

विद्यादि शुभ गुणों का दान समाज, राष्ट्र व संसार की विद्या में वृद्धि करता है जिससे प्रत्येक नागरिक समाज में शुभगुणों से सुशोभित होकर सुख-सृजन करता है संगतिकरण रूपी यज्ञ का प्रभाव तो अद्भुत है प्रसिद्धनीति वचन है **'संघे शक्ति युगे युगे।'** संगठन में शक्ति है और हर युग में रही है व रहेगी। परिवार से लेकर समाज, राष्ट्र हो या विश्व सांस्कृतिक राजनैतिक ताना बाना सब संगठन ही हैं। ये समस्त संगठन अच्छे लोगों के हों श्रेष्ठ लोगों के हों, हम अच्छे लोगों को अच्छे लोगों का संग दे सकें ताकि सभ्यता-संस्कृति समाज में संसार में स्थापित हों। गृहस्थों को भी चाहिए उत्तम गृहस्थ जीवन के लिए हम ईष्ट कर्मों को करें। इन कर्मों के नाम चाहे जो भी हों किन्तु इनकी मूल भावना यही है इस भावना से युक्त समस्त इष्ट कर्मों को करना। दूसरा है **'आपूर्ति'** इसमें आपूर्ति है वह कैसी और किसलिए- पूर्णबल की प्राप्ति के लिए जो चाहिए वह, ब्रह्मचर्य, विद्या का सम्मान, सुदृढ़ पूर्ण युवा व सभी उत्ततोत्तम साधनोपसाधन।

ब्रह्मचर्य-जीवन का एक भाग है वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व वैश्विक जीवन की आधारशिला है, आत्मिक, शारीरिक बल प्राप्ति के लिए इसी ब्रह्मचर्य का साफल्य आवश्यक है। लोक प्रसिद्ध बात है कि यदि किसी देश के युवा को दिशाहीन कर दिया जाय तो निकट भविष्य में वह देश दिशाहीन होकर दुर्दशा को प्राप्त हो जायेगा, युवा को दिशा देते ही राष्ट्र की दशा में गुणात्मक सुधार आरम्भ हो जाता है। आज हमारे देश सहित संसारभर में अनेकों मतपंथ संप्रदाय सड़क पर खड़े होकर, आग्रहपूर्वक जल पिलाने, कपड़े-जूते दान करने खिचड़ी खिलाने, चाय पिलाने, औषधियाँ वितरित करने, विवाह हेतु सार्थक आदि दान देना मात्र को ही आपूर्त कर्म मानते है। कई तो इसी को भक्ति समझते हैं।

निश्चित रूप से उक्त कर्म भी आपूर्त कर्म हैं और यह धर्म का भाग ही हैं किन्तु अत्यन्त विस्तृत व व्यापक धर्म का छोटा सा ही भाग मात्र है यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि यदि इसके भीतर से ऋषि दयानन्द द्वारा निर्देशित भावना को निकाल दिया जाए तो यह अत्यन्त उपकार का कार्य न रहकर सामान्य उपकार ही रहता है।

अतः गृहस्थों को चाहिए कि ब्रह्मचर्य को सफल बनाने का यत्न करें। उसका वातावरण बनावें जिससे वर्तमान से लेकर भावी ग्रहस्थ पूर्ण बल से युक्त हो सकें, इस साफल्य के लिए विद्या की प्रतिष्ठा करनी ही चाहिए क्योंकि कठिन तप बड़े लक्ष्य के लिए ही किया जाता है विद्या की प्रतिष्ठा उसकी शोभा से ब्रह्मचारियों के लिए आवश्यक है कि विद्या प्राप्त करके लौटे सफल ब्रह्मचारियों को उत्तमोत्तम साधनोपसाधन उपलब्ध कराना सभी का दायित्व है।

उक्त वातावरण को बनाने में अन्य भी कई घटक काम आते हैं यथा राजव्यवस्था, समाज के लोगों के परस्पर सहयोग की भावना आदि। किन्तु यदि इष्टापूर्त कर्मों को सर्वोच्च मानकर समाज में वातावरण बनाना आरम्भ करें तो अन्य घटक भी उत्तम होने लगेंगे, जड़-चेतन सबका सहयोग वातावरण के लिए मिलता हुआ दीखने लगेगा।

समाज में एक और वृत्ति बड़ी महत्वपूर्ण है वह है सुधार। सुधारात्मक वृत्ति की आवश्यकता सदैव रही है और रहेगी हम सब मनुष्य हैं और हमारे कार्य कभीं भी पूर्ण नहीं होते उनमें सुधार की आवश्यकता क्रर्मिक रूप से रहती है। यह सुधार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होता रहता है होता रहना चाहिए। किन्तु मतवाद के कारण संसार में देखने में आता है कि कई देशों में अथवा समाज के कई घटकों में कुछ परम्परायें परिस्थितियों के कारण आरम्भ होती हैं और पुनः उन्हें निरन्तर हर अगली पीढ़ी पर थोपा जाता रहता है। चाहे वे परिस्थितयाँ अब दूर-दूर तक न रही हों। इनमें कई परम्पराओं को उदाहरण के रूप में गिना जा सकता है जैसे- मुसलमानों में बुर्का पहनना, दाढ़ी में हिसाब लगाना, ऊँचा पाजामा पहनना आदि, ईसाईयों में भूत प्रेतादि के सम्बन्ध में विश्वास, मोमबत्ती का जलाना आदि जैन, बौध, हिन्दूओं आदि सभी में इस प्रकार की परम्परायें पाई जाती हैं। जिन्हें हटाने के बारे में सोचना कठिन है वर्तमान के आर्य समाज का भी एक उदाहरण दे सकते हैं साप्ताहिक यज्ञ के उपरान्त शेष घृत का हाथों पर लगाकर तेजोऽसि आदि की प्रार्थना करना सुधारात्मक वृत्ति के बिना इन सबको हटाना असम्भव होता है और ये धर्म रूपी गाड़ी के बोझ को बढ़ाकर उसकी गति को धीमा करते रहते हैं। इस सुधार को सतव चलाने के लिए आवश्यक होगा समाज को प्रमाणिकता को स्वीकार करें। समाज के लोग यह कहना करना और ढूँढना सीखें कि समाज, राष्ट्र या परिवार में कोई बात चली है तो क्या वह प्रमाणिक है अथवा ऐसे ही किसी ने लाद दी है। आज अपुष्ट सूचनाएँ समाज को बिगाड रही है सूचना प्रोद्योगिकी के इस दौर में और भी अधिक आवश्यक है कि समाज प्रमाण लेकर ही किसी की बातों पर विश्वास करे।

क्रमश ....

सहज सरल सांख्य-१५

- आचार्य सतीश, दिल्ली

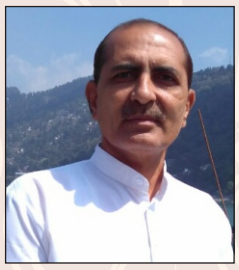

प्रश्न है कि प्रकृति तो एक है फिर सृष्टि में यह विभिन्नता क्यों?

जैसे दास का पुत्र अपने स्वामी के लिए विभिन्न चेष्टा करता है, प्रकृति भी जो सत्व, रजस्, तमस् के रूप में विभिन्नता लिए हुए है, पुरुष के निमित्त होते हुए विभिन्न चेष्टा करती है। जिसमें आत्माओं के अनन्त प्रकार के कार्य निमित्त बनते हैं। इसी से सृष्टि में इतनी विभिन्नता दिखाई देती है।

तो क्या शुभ कर्मों से उत्तरोत्तर उच्च योनि में जन्म लेना ही प्रर्याप्त है?

उर्ध्वलोक की प्राप्ति ही मोक्ष है, ऐसा विचार भी त्याज्य है क्योंकि वहाँ भी पुनः-पुनः जन्म का सम्बन्ध बना रहता है। क्योंकि जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु रूपी दुख सभी योनियों में समान रूप से बना रहता है।

प्रकृति में तल्लीन हो जाने से पुनरावृत्ति न होगी, ऐसा मान लेना उपयुक्त नहीं है। क्योंकि जैसे जल में डूबा हुआ व्यक्ति ऊपर आएगा ही, वैसे ही प्रकृतिलीन का भी पुनर्जन्मार्थ बाहर आना होता है।

चूंकि प्रकृति परवश है परवशता के कारण वही कार्यरूप में परिणत होती है, पुरुष नहीं। वह जो 'पर' है वह उसे कार्यरूप में परिणत कर देता है तो फिर वह 'पर' कैसा है?

वह 'पर' जो प्रकृति को परिणत करता है निश्चय ही सर्ववित् अर्थात् सर्वत्र जिसकी सत्ता है और सर्वकर्ता अर्थात् सब जगत का रचियता है। ऐसे सर्वज्ञ, सर्वकर्ता ईश्वर पुरुष विशेष की सत्ता नित्य है, सिद्ध है।

जैसे केसर ढ़ोने वाले ऊँट की प्रवृत्ति केवल वहन के लिए है, ऊँट का स्वामी प्रेरयिता मात्र है। केसर का उपभोक्ता अन्य व्यक्ति है। वैसे ही प्रकृति का अपना कोई प्रयोजन नहीं होता, चेतन ईश्वर उसका प्रवर्तक है और चेतन आत्मा उसका उपभोक्ता है। अर्थात् सृष्टि स्वयं के लिए नहीं चेतन आत्मा के लिए है।

लेकिन अचेतन होते हुए प्रकृति में प्रवृत्ति किस प्रकार होती है?

जैसे माता या गौ के आश्रित होने से दूध उसके बच्चे या बछड़े के लिए प्रवृत हो जाता है वैसे ही प्रकृति जड़ होते हुए प्रवृत होती है। प्रकृति के स्वतः कहे जाने वाले समस्त विकार चेतनासापेक्ष ही होते हैं, उनको स्वतः केवल इसलिए कहा जाता है कि किसी भी विकार अथवा कार्यरूप में प्रवृत होने या विकार का उपादान होने के लिए प्रकृति से अतिरिक्त अन्य किसी तत्व की अपेक्षा नहीं होती।

किसान के बीजारोपण के पश्चात् काल ऋतु आदि से वृक्ष बन जाता है ऐसे ही प्रकृति चेष्टा करती है और सृष्टि रूप बन जाती है। ईश्वर की प्रेरणावश कालादि के साथ माता में स्नेह से वह ऊँट स्वामी के भय से केसर ढोने में प्रवृत होता है।

किन्तु प्रकृति क्यों ऐसा करती है?

सूत्रकार कहता है जैसे भृत्य बिना किसी चेष्ठा के स्वभाव से स्वामी की सेवा में प्रवृत रहता है वैसे ही प्रकृति में स्वभाववश ऐसा होता है। वैसे भी प्रकृति परिणामिनी है, उसके अपने भक्तित्व की सार्थकक्षा इसी में है कि वह कार्यरूप में परिणत हो।

वैसे भी कर्मों क्रम अनादि है। आत्मा द्वारा कर्मों को करने और उसका फल भोगने के लिए जगत् की स्थिति आवश्यक है। इस प्रकार अनादि कर्मों का प्रभाव भी प्रकृति की प्रवृत्ति में एक निमित है।

जब प्रकृति है तो क्या निवृत्ति भी होगी?

लेकिन जिसे विवेकज्ञान हो जाता है उसके लिए प्रकृति कार्य की निवृत्ति अर्थात् उसके लिये प्रकृति निष्प्रयोजन हो जाती है। इसे ही प्रकृति का निवृत या कार्य विरत होना कहा जाता है। जैसे पाचक कार्य पूरा होने पर पकाने के कार्य से विरत हो जाता है।

लेकिन यह निवृत्ति सबके लिये तो नहीं पायी जाती?

मुक्त आत्मा से इतर अर्थात् जिसे आत्मज्ञान ही नहीं हुआ, का सम्पर्क प्रकृति से बना रहेगा। इसलिए किसी एक आत्मा के मुक्त हो जाने से शेष आत्माओं के लिए उस रूप में कोई प्रभाव नहीं होता।

प्रकृति व पुरुष दोनों का एक दूसरे से उदासीन अर्थात् विरत हो जाना अपवर्ग है। वास्तव में आत्मा अपने वृत्तिसरूपता को छोड़कर स्वरूप में अवस्थित हो जाता है, प्रकृति तो उसी रूप में रहती है, अतः उसी का औदासीन्य होता है।

मुक्त आत्माओं के अतिरिक्त अन्यों के लिए तो सृष्टि की रचना में प्रकृत्ति विरक्त नहीं होती, वह बराबर कार्यरूप में परिणत होती रहती है। जैसे रस्सी को वास्तविक रूप में जान लेने वाले व्यक्ति का सर्व भ्रम दूर हो जाता है, अन्यों के लिए तो वह सर्पमय बना ही रहता है।

अविवेकी आत्माओं के अमुक्त कर्म प्रकृत्ति की प्रवृत्ति में निमित्त बने रहते हैं, केवल विवेकी आत्माओं के ही संचित प्रारब्ध आदि कर्मों का नाश होता है।

अचेतन होने से प्रकृति तो निरपेक्ष है वह तो सबके लिए समान रूप से भोगापवर्ग सामग्री उपलब्ध करवाती है। अविवेकी आत्माओं के लिए भोग उपलब्ध रहता है, जब विवेक हो जाता है तो उनके लिए उसका कोई महत्व नहीं। अतः अविवेक ही प्रकृति की प्रवृत्ति को चालू रखने में निमित्त है क्योंकि कुछ अविवेकी आत्माएं सदा रहती हैं।

क्रमश ....

संध्या काल

श्रावण-मास, वर्षा-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(25 जुलाई 2021 से 22 अगस्त 2021)
प्रातः कालः 5 बजकर 30 मिनट से (5.30 A.M.)
सांय कालः 7 बजकर 00 मिनट से (7.00 P.M.)

भाद्रपदा-मास, शरद-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(23 अगस्त 2021 से 20 सितम्बर 2021)
प्रातः कालः 5 बजकर 45 मिनट से (5.45 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 45 मिनट से (6.45 P.M.)

योग दर्शन

-आर्य आनन्द स्वरूप, मुजफ्फरनगर

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, योग दर्शन की उपरोक्त सीढ़ी पर क्रमशः चलकर मनुष्य मोक्ष का उत्तराधिकारी बन सकता है, जिसकी इच्छा प्रत्येक प्रबुद्ध जन की सदा से रही है। यही तो मनुष्य का परम लक्ष्य है। परन्तु ये सीढ़ी तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। यद्यपि समय से मिले वा वातावरण और अभ्यास से यह तीक्ष्ण धार भी सहज आनन्दायक बन जाती है।

यम जो प्रथम पायदान है में भी पाँच उप पायदान हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

अहिंसा के लिए कहा गया है- अहिंसा परमोधर्मः। परमधर्म जिससे समाज का उपकार होने के साथ स्वयं आत्मा का उत्थान हो। अहिंसा के लिए कहा गया है किसी को मन से भी न सतावे, कष्ट दिये जाने पर भी मन में प्रतिकार का भाव न उठे। कितना कठिन है आम जन में तो अहिंसा किसी की हत्या न करना ही समझा जाता है परन्तु कष्ट देने वाले के प्रति मन में भी उसके प्रति वैरभाव पैदा न हो और वह भी इस युग में जहाँ जरा-जरा सी बातों में खून की होली हो जाती है। तो क्या वेद-शास्त्रों, ऋषि-मुनियों आप्त पुरुषों के कथन में कुछ खामी है। क्या सम्भव भी है। बुराई करने वाले के प्रति मन में भी बदले की भावना अथवा कुछ बुरा पैदा न हो।

संसार में कुछ भी असम्भव नहीं और फिर जब वेद जिस कर्म के लिए कहता है वह असम्भव कैसे हो सकता है। हाँ कठिन तो हो सकता है। अहिंसा का पालन भी असम्भव नहीं, कठिन तो है। परन्तु 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान' कहावत तो प्रसिद्ध है ही। उपरोक्त अष्टांग योग भी ऐसा ही है। सभी सीढ़ियाँ कठिन अवश्य हैं परन्तु उन पर चलना असम्भव नहीं हैं।

अहिंसा का मजा, अहिंसा का लाभ केवल व्यवहार से ही प्राप्त किया जा सकता है। संसार में वर्तमान दशा, वर्तमान क्या पूर्व दशा भी कभी हिंसा से खाली नहीं रही। मनुष्य के पाँच शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार सदा से ही मनुष्य के पीछे लगे रहे हैं और इनमें प्रत्येक हिंसा के जनक हैं। राग और द्वेष से विमुख तो वीतरागी हो जाता है। कभी देखा है किसी वीतरागी को! हमारे समाने सबसे बड़ा उदाहरण स्वामी दयानन्द सरस्वती का है। एक बार नहीं अनेकों बार उनके चरित्र में अहिंसा के सवंर्धन का चित्रण होता है। परोपकार के बदले में गालियाँ, ईंट, पत्थर और विष तक भी खाने को मिला, परन्तु क्या मजाल कभी अहिंसा ने साथ छोड़ा हो। प्रत्येक बार दोषी के प्रति मन में प्रतिकार का भाव न आया। एक दुष्ट ने पान में विष दिया। पता होने पर तहसीलदार उसे पकड़ कर स्वामी जी के पास लाए पर स्वामी जी ने तहसीलदार से उसे छुड़वा दिया। अनेकों घटनाये हैं।

अहिंसा के पालन से मनुष्य के जीवन मे अद्‌भुत उत्थान आ जाता है उसके मन में अद्‌भुत आनन्द का समावेष हो जाता है। जो उसके कार्य-कलापों एवं मुख पर स्पष्ट उभर आता है। इसके विपरीत हिंसा का बोझ मन पर धधकती ज्वाला की तरह मन, बुद्धि और शरीर को अपने पाश में लेकर प्रतिक्षण दग्ध करता रहता है। हिंसा से ग्रस्त व्यक्ति सम्बधित का कुछ बिगाड़ पाये या नहीं लेकिन स्वयं को अतिशय कष्ट में डाले रहता है। न रागा-रंग में मन लगता है और न खाने-पहनने अथवा अन्य कामों में। मन-चित्त-बुद्धि रोग ग्रसित हो आत्मा के कष्ट का कारण बन जाते हैं। हिंसा से हिंसा का प्रतिकार नहीं हो सकता अहिंसा ही हिंसा की दवाई है। अहिंसा ही हिंसा का प्रतिकार है। अहिंसा के बिना कितने जीवन, कितने राष्ट्र बरबाद हो गये हैं, लम्बी सूचि है। इसी से यम पालन में अहिंसा को पहला स्थान मिला हुआ है। अहिंसा के बिना न सत्य का पालन हो सकता है। और न अन्य यम-नियमों अस्तेय, ब्रह्मचार्य और अपरिग्रह का।

दो सगे भाइयों का मामला था कई वर्षों से न्यायालय में केस चल रहा होगा। दोनों के परिवार पूरी तरह अलग हो चुके थे। दोनों भाइयों के साथ-साथ दोनों परिवारों से अहिंसा विदा ले चुकी थी। केस मे क्या होगा यह चिंता तो हर समय खाये जाती ही थी। समय और धन के आय-व्यय के साथ ही तन-मन की शान्ति विलुप्त हो चुकी थी। शरीर पर अहिंसा, अशान्ति का प्रभाव कोई भी देख सकता था। इसी दुख से दुखी हो छोटे भाई ने सन्यास ले लिया। घर से दूर आश्रम में मन की शान्ति की खोज करने लगा। परन्तु शान्ति स्थान, वेष आदि के बदलने से थोडे ही प्राप्त होती है। प्रतिदिन आश्रम में सत्संग भी होता था। वह भी सत्संग में बैठता, सुनता था परन्तु हिंसा की आग उसे सुनकर भी कुछ सुनने देती थी। वह आश्रम में रहकर भी घर जैसा ही रहा। हिंसा की अग्नि कहाँ चैन लेने देती है।

एक दिन घूमते हुये एक संत भी उस सत्संग में बैठे थे उन्होंने उसकी बेचैनी को देखा और समझ गये कि दाल में कुछ काला है। सत्संग के बाद जब वह एक वृक्ष के नीचे सोच में डूबा बैठा था। संत ने देखा और कुछ सोच कर उसके पास जा कर बैठ गये। संत तो परोपकार के लिए ही फिरते रहते हैं। कुछ क्षणों तक दोनों शांत रहे बिना एक दूसरे की ओर देखे। वह हिंसा से दंशित व्यक्ति जिसका कल्पित नाम रोशनलाल रखते हैं, ने कुछ क्षणों के बाद संत की ओर एक दृष्टि डालकर उनके पैर छुये। संत ने आशीर्वाद में हाथ उठाकर ओंम का उच्चारण किया। संत ने पूछा भक्त क्या बात है जिसने तुम्हे इस दशा में पहुँचा रखा है। रोशनलाल ने सिर झुका लिया कुछ बोल नहीं पाये। 'भक्त, मन की बात कहने से मन का बोझ हल्का हो जाता है। और ईश्वर की कृपा से हल भी निकल आता है। रोशनलाल की आँखें छलक उठी । संत ने रोशनलाल के सिर पर हाथ रख दिया 'हिम्मत न हारों सुख-दुख आते जाते रहते हैं। संसार में सदा एकसा कुछ नहीं रहता। कुछ तो बोलो। संत के स्पर्श और अमृतवाणी से रोशनलाल अभिभूत हो गये। 'महाराज, बहुत दुखी हूँ और इस दुख से घुटने का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ रहा है। इस बोझ को लेकर ही कदाचित संसार से जाना होगा।' कोई बात नहीं मुझे कुछ तो बताओ। संत की शीतलवाणी जैसे शीतल हवा का झोंका था। स्वामी जी एक-एक कर मन के तारों को सहला रहे थे, जिससे रोशनलाल फूट पड़े। बड़े भाई से जायदाद का झगड़ा वर्षों से चल रहा है। तन-मन-धन तीनों क्षीण होते जा रहे हैं। हर समय मन में दूसरा कोई विचार नहीं आ पाता। घर पर रहना कठिन हो गया तो यह सोचकर वेष बदला कि इससे कुछ शान्ति मिलेगी परन्तु स्थिति ज्यों की त्यों है।

क्रमश ....

आर्योद्देश्यरत्नमाला

प्रणेता - ऋषि दयानन्द
व्याख्याता - आचार्य परमदेव मीमांसक

शब्द, स्पर्श आदि गुण परमात्मा में नहीं हैं ऐसा निश्चय जान अपने आत्मा को समाधि में उसके स्वरूप में निमग्न कर देना, और संसार में वेद की आज्ञा के अनुसार चलना **निर्गुण उपासना** है।

२८. सगुणोपासना-जिस की सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, नित्य, आनन्द, सर्वव्यापक, एक, सनातन, सर्वकर्त्ता, सर्वाधार, सर्वस्वामी, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, मंगलमय, सर्वानन्दप्रद, सर्वपिता सब जगत् का रचने वाला, न्यायकारी, दयालु आदि सत्यगुणों से युक्त जानके जो ईश्वर की उपासना करनी है, सो **'सगुणोपासना'** कहाती है।

व्याख्या-जो-जो गुण परमेश्वर में हैं, उनसे युक्त प्रशंसा करना सगुण स्तुति, शुभ गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा सगुण प्रार्थना, और सब गुणों से सहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके स्वरूप में निमग्न और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना 'सगुण उपासना' कहाती है।

(सत्यार्थप्रकाश-स्वम० प्रकाश)

सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, नित्यादि गुण सम्पन्न परमात्मा है, ऐसा निश्चय जान अपने आत्मा को समाधि में उसके स्वरूप में निमग्न कर देना और संसार में वेद की आज्ञा के अनुसार चलना **सगुण उपासना** है।

२९. मुक्ति-अर्थात् जिस से सब बुरे कामों और जन्म-मरणादि दु:खसागर से छूटकर सुखस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होके सुख ही में रहना, **'मुक्ति'** कहाती है।

व्याख्या-मुक्ति अर्थात् सर्व दु:खों से छूटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुन: संसार में आना।
(सत्यार्थप्रकाश-स्वम० प्रकाश)

शरीर के रहने पर अच्छे-बुरे कर्म होते रहेंगे, मुक्त पुरुष ही केवल मोक्षवत् सुख भोगते हैं, न पुण्य और न ही पाप करते हैं, अन्यथा अल्पज्ञता के कारण ये कर्म होते रहेंगे । जब तक कैवल्य की प्राप्ति न हो जाये तब तक जन्म-मरणादि दु:खसागर से छूटना असम्भव है। जब कैवल्य की प्राप्ति होकर चित्तादि अपने-अपने कारण में लीन हो जाते हैं तो सब बुरे कामों एवं जन्म-मरणादि दु:खसागर से छूटकर आनन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होकर आनन्द को भोगना **मुक्ति** कहाती है। इसकी अवधि ३६००० बार सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय जितनी है।

३०. मुक्ति के साधन-अर्थात् जो पूर्वोक्त ईश्वर की कृपा स्तुति, प्रार्थना और उपासना करना तथा धर्म का आचरण, पुण्य का करना, सत्संग, विश्वास, तीर्थसेवन, सत्पुरुषों का संग परोपकारादि सब अच्छे कामों का करना और सब दुष्ट कर्मों से अलग रहना है, ये सब **'मुक्ति के साधन'** कहाते हैं।

व्याख्या-**मुक्ति के साधन ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।**

(सत्यार्थप्रकाश-स्वम० प्रकाश)

सर्वप्रथम दु:ख देनेवाले दुष्ट कर्मों को छोड़ सुखप्रदान करने वाले अच्छे कर्मों को करें, क्योंकि पापाचरण दु:ख का और धर्माचरण सुख का मूल कारण है, पुरुषार्थी हो आप्त विद्वानों के संग से ब्रह्मचर्य पूर्वक सत्यविद्या अर्थात् वेद का अध्ययन करें । विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति, मुमुक्षुत्व, अनुबन्ध-चतुष्टय और श्रवण-चतुष्टय को धारण करते हुए योगाभ्यास की उच्चतर भूमि समाधि के द्वारा पञ्चक्लेशों को दग्ध करके कैवल्य की उपलब्धि करके चित्तादि को कारण में प्रतिप्रसव की ओर उन्मुख करते हुए ईश्वर की कृपा से मोक्ष को प्राप्त करें।

३१. कर्त्ता-जो स्वतन्त्रता से कर्मों का करने वाला है अर्थात् जिसके स्वाधीन सब साधन होते हैं, वह **कर्त्ता** कहाता है।

व्याख्या-शरीर, इन्द्रियाँ आदि का निर्माण ईश्वर ने करके जीव को इसमें स्थापित किया है, तथा जीव के अधीन ही ये शरीर आदि रखे हैं, अत: इन शरीर, इन्द्रियादि से कार्य करने वाला जीव ही कर्त्ता है। मनुष्य इस शरीर आदि से चाहे अच्छा कर्म करे, चाहे बुरा कर्म करे, ईश्वर कभी हाथ पकड़ने नहीं आयेगा, कर्म करने में स्वतन्त्रता दे रखी है।

३२. कारण-जिस को ग्रहण करके ही करने वाला किसी कार्य चीज को बना सकता है अर्थात् जिसके बिना कोई चीज बन ही नहीं सकती, वह **'कारण'** कहाता है। सो तीन प्रकार का है।

३३. उपादान कारण-जिसको ग्रहण करके ही उत्पन्न होवे वा कुछ बनाया जाय जैसा कि मिट्टी से घड़ा बनता है। उसको **'उपादान'** कहते हैं।

३४. निमित्त कारण-जो बनाने वाला है जैसा कि कुम्हार घड़े को बनाता है, इस प्रकार के पदार्थों को **'निमित्त कारण'** कहते हैं।

३५. साधारण कारण-जैसे चाक, दण्ड आदि और दिशा, आकाश तथा प्रकाश है, इनको **'साधारण कारण'** कहते हैं।

संयुक्त व्याख्या-वस्तु के निर्माण में जिसके ग्रहण किये बिना वह बन ही नहीं सकती है, उसको कारण कहते हैं। कारण है तो कार्य है। जिस द्रव्य से वस्तु का निर्माण होता है वह उपादान कारण, जो बनाता है वह निमित्त कारण, जो बनाने मे सहायक साधन होता है वह साधारण कारण कहाता है। जैसे-घड़े के निर्माण में-मिट्टी उपादान, कुम्हार निमित्त, चाक-दण्ड-प्रकाश-आकाश -दिशा आदि साधारण कारण होते हैं। सृष्टि के निर्माण में सत्त्व, रज, तम रूपी मूल प्रकृति उपादान कारण, ईश्वर निमित्त कारण; जीवों के पाप-पुण्य कर्म तथा अवकाश आदि साधारण कारण होते हैं। ईश्वर, जीव और मूल प्रकृति का कारण नहीं होता है, ये कारण तो बनते हैं; ईश्वर और जीव कार्य रूप में कभी परिणत नहीं होते हैं; मूल प्रकृति ही कार्य में परिवर्तित होती है।

३६. कार्य-जो किसी पदार्थ के संयोग से स्थूल होके काम में आता है अर्थात् जो करने के योग्य है, वह उस कारण का **'कार्य'** कहाता है।

व्याख्या-किसी पदार्थ के विशिष्ट संयोग से जो नया पदार्थ बनता है, वह पुराने पदार्थ का कार्य कहलाता है। जैसे मिट्टी से घड़ा बनता है, घड़ा मिट्टी का कार्य है। यदि मिट्टी का विशेष संयोग न हो तो घड़ा नहीं बन सकता है। मिट्टी के विशिष्ट संयोग से ही घड़ा, सिकोरा, सुराही आदि बनते हैं।

क्रमश ....

प्राचीन भारत में नारीवाद

-सोनू आर्य, हरसौला

समकालीन समाज में उत्तर आधुनिकतावादी, उत्तर भौतिकतावादी आंदोलनों को नव सामाजिक आंदोलन कहा जाता है। 1960 के दशक में शुरु मानवीय जीवन में फैले अन्याय से प्रेरित इन आंदोलनों का सरोकार न केवल मनुष्य अपितु प्राणीमात्र से माना जाता है। इनमें पर्यावरणवादी आंदोलन, उपभोक्तावादी आंदोलन, परमाणु निशस्त्रीकरण तथा शांति आंदोलन आदि उल्लेखनीय हैं। नारीवाद भी नव सामाजिक आंदोलनों में मुख्य तथा नवीन प्रवृत्ति रही है जिसकी उत्पत्ति पश्चिमी समाजों से मानी जा सकती है। इसका मूल मेरी वाल्सटनक्राफ्ट (ए विडिकेशन ऑफ द राइट ऑफ वूमेन) तथा मिल के विचारों में पाया जाता है। इन्होंने महिलाओं के लिए समान अधिकारों का समर्थन किया जो पुरुषों को प्राप्त हैं, लेकिन आंदोलन से इतर नारी गरिमा के विचार के रुप में इसकी शुरुआत तभी से मानी जा सकती है जब से परिवार व समाज नामक संस्थाओं का उदय हुआ। आधुनिक नारीवाद की श्वेत तथा अश्वेत नारीवाद, यौन स्वच्छंदता एवं पारिवारिक संस्था के उन्मूलन के विचारों को लेकर आलोचना की जाती है। इसका सैद्धांतिक पक्ष जितना स्वच्छंद है, व्यवहारिक पक्ष उतना ही अशक्त है। क्योंकि पश्चिम में नारी को आत्मा रहित भोग की वस्तु के रुप में देखा जाता रहा है। भारतीय संदर्भ में नारी गरिमा के विचार के रुप में नारीवाद विश्व पुस्तकालय के प्राचीनतम ग्रंथों वेदसहित संपूर्ण वैदिक वांग्मय में न केवल सैद्धांतिक अपितु व्यवहारिक रुप में विद्यमान रहा है। वेदों में नारी को इडा, रन्ते, हव्ये, काम्ये, ज्योति, अदिति, सरस्वती आदि विशेषताओं से संबोधित कर पूजा व सम्मान की अधिकारिणी बताया गया है। उषा श्री लक्ष्मी सरस्वती से संबंधित मंत्र नारी गरिमा को ही दर्शाते हैं। विश्व के प्रथम संविधान प्रणेता महर्षि मनु ने **'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमते तत्र देवता'** कहकर नारी गरिमा को प्रतष्ठित किया एवं स्त्री सम्मान में पहले मार्ग छोड़ देने का आदेश देकर वर्षों पूर्व लेडीज फर्स्ट के आधुनिक नारे का उद्घोष किया। मनु के अनुसार कोई महिला दूसरे की पत्नी हो तथा सगेपन से संबंधन रखने वाली हो अर्थात् बहन आदिन हो उसे भवती! शुभग! भगिनी! इस प्रकार के शिष्टाचारवाचक शब्दों से संबोधित करें। नारी को परिवार की प्रतिष्ठा सुख वधर्माधार कहा गया है! अत: स्त्रियों से बलात्कार व व्यभिचार करने में संलग्न पुरुषों को राजा व्याकुलता पैदा करने वाले दंडों से दंडित करके देश से निकाल दे। किंतु मनु के अनुसार कभी भी स्त्रियों को बलात् रोककर बुराइयों से नहीं बचाया जा सकता। अपितु वह तो आत्म नियंत्रण से ही बुराइयों से बच पाती है। मनु बड़ी भाभी को गुरुपत्नी तथा छोटी को पुत्रवधू का दर्जा देकर सम्मानित करते हैं व इनसे संबंध बनाने वाले को अपराधी पापी मानते हैं। महाभारत के अनुसार स्त्रियां घर की लक्ष्मी, सौभाग्य शालिनी, मान और सत्कार के योग्य, पवित्र तथा घर की शोभा हैं। अत: इनकी विशेष रुप से रक्षा करनी चाहिए। भीष्म जी के अनुसार किसी समाज की कुशलता का मापदंड स्त्री का सम्मान है! देश की सीमाएं माता के वस्त्रों के समान होती हैं। इसी कारण भारत में भूमि को माता (नारी रुप मे) संबोधन से सम्मानित किया गया तथा आर्यों ने भारतीय इतिहास के दो बड़े युद्ध रामायण और महाभारत नारी सम्मान की रक्षा के लिए लड़े। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार **'मातृमान पितृमान आचार्यवान पुरुषौवेद'** अर्थात जन्म से पांच वर्ष तक शिक्षा देने के कारण माता को प्रथम शिक्षक तथा निर्माता (माता निर्माता भवति कहा गया है) महाकाव्यों के काल में स्त्री सम्मान का सहज संकेत इस बात से हो जाता है कि पुत्रों को पिता से अधिक माता के नाम से जाना जाता था। यथा-अंजनि पुत्र (हनुमान), गंगापुत्र (भीष्म), देवकीनंदन (कृष्ण), पृथापुत्र (पार्थ), कुन्ती पुत्र (अर्जुन) आदि।

समस्त वैदिक साहित्य में स्त्री पुरुष को समान माना गया है दोनों से मिलकर गृहस्थ शरीर बनता है। दोनों को एक दाने की दो दालों वदो सीप मोतियों के समान बराबर माना गया है। पत्नी को अर्धांगिनी अर्थात् आत्मा के आधे भाग के समान माना गया है! दोनों को सृष्टि जनक - जननी कहा गया है। कोई छोटा बड़ा ना होकर बराबर है। महर्षि व्यास के अनुसार स्त्री पुरुष का आधा भाग है। पति की श्रेष्ठ मित्र, धर्मार्थ काम में तथा संसार सागर तरने में सर्वाधिक सहायक है। वेदों में भी यही भाव द्रष्टव्य है। यथा- मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हो तथा पुत्री भी तेजस्विनी हो। परमेश्वर हमें कन्याभागी अर्थात् कन्या प्रदान करें। वैदिक राष्ट्रगीत में नारियों को राष्ट्र आधार कहा गया है। डॉ आंबेडकर के अनुसार प्राचीन काल में राज्याभिषेक के पहले चयनित राजा केवल रानी की ही नहीं बल्कि नीची जाति की अपनी अन्य पत्नियों की भी स्तुति करता था। इसी प्रकार वह राज्याभिषेक के बाद अपने प्रमुख शासन अधिकारियों की पत्नियों का भी अभिवादन करता था। पत्नी के बिना आयोजित यज्ञ को अपूर्ण माना गया है। अत: समस्त यज (दैनिक श्रेष्ठ कार्य) पत्नी के साथ करने चाहिए !

नारी को पुरुष की अर्धांगिनी एवं सहयोगी न केवल पारिवारिक एवं सामाजिक कार्यों अपितु शैक्षणिक एवं शस्त्र विद्या में भी पुरुषों के समान अधिकारिणी बताया गया है। वेदों में स्पष्टत: नारी को यज्ञोपवीत एवं वेदाध्ययन का अधिकार दिया गया है ऋग्वेद भाष्य में महर्षि दयानंद लिखते हैं जो कन्या 24 वर्ष पर्यंत ब्रह्मचर्य पूर्वक अंग उपांग सहित वेद विद्याओं को पढ़ती है वह मनुष्य जाति को सुशोभित करती है। अत: वैदिक अद्यता नारियां मंत्रों के रहस्य जान मंत्रद्रष्टा कहलाती थी। घोषा, अपाला, लोपामुद्रा, रोमशा, सची, इंद्राणी आदि को मंत्रद्रष्टा कहा गया है। गार्गी तथा मैत्रैयी द्वारा किए गए गहन तात्विक विचार प्रसंग बृहदारण्यक व छांदोग्योपनिषद में द्रष्टव्य हैं। दोनों ऋषिकाओं का याज्ञवल्क्य रचित यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रंथ शतपथ के लेखन में विशेष सहयोग था। राजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य पत्नी गार्गी का उनसे शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है। डॉक्टर अंबेडकर के अनुसार अथर्ववेद में आए इस प्रसंग से कि ब्रह्मचर्य काल पूरा करने के उपरांत कन्या विवाह के योग्य मानी जाए यह स्पष्ट होता है कि उस काल की नारी उपनयन की भी अधिकारिणी थी। श्रोत सूत्र से हमें विदित होता है कि स्त्रियों को वेदाध्ययन कराया जाता था और वे वेद मंत्रों का उच्चारण कर सकती थी और सबसे बड़ा प्रमाण तो पाणिनी की अष्टाध्यायी है जिससे सिद्ध होता है कि स्त्रियां गुरुकुल में रहकर वेदों की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन करती थी तथा मीमांसा में पारंगत होती थी। पतंजलि का महाभाष्य हमें बताता है कि स्त्रियां उस समय आचार्य भी थी और कन्याओं को वेद पढ़ाती थी पुरुषों के साथ धर्म दर्शन अभ्यास आदि गूढ विषयों पर स्त्रियों के शास्त्रार्थो के उदाहरण भी कम नहीं हैं। जनक और सुलभा, याज्ञवल्क्य और गार्गी, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी तथा शंकराचार्य और विद्याधरी के शास्त्रार्थ यह दर्शाते हैं कि मनुस्मृति के पहले के युग में स्त्रियां ज्ञान व शिक्षा शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... के क्षेत्र में उच्चतम शिखर पर पहुंच सकती थी। भारतीय इतिहास इस बात को निर्विवाद रूप से सिद्ध कर देता है कि एक युग ऐसा था जिसमें स्त्रियां अत्यंत सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी! रामायणकाल में विदुषी सुलभा ने प्रतिज्ञा की थी कि जो उन्हें शास्त्रार्थ में पराजित करेगा, वह उससे ही विवाह करेंगी किंतु अपने योग्य पति ना मिलने के कारण सुलभा ने सन्यासाश्रम में प्रवेश किया। सीता के स्वयंवर में धनुष तोड़ने की शर्त रखने का अभिप्राय भी यही था कि सीता को उनके योग्य बलशाली पति प्राप्त हो। महाभारत मे नीच वर्ण की स्त्री तक को धर्माभिलाषी होने पर योगमार्ग सेवन का प्रावधान किया गया है। महाकाव्य में शिवनाम की पत्नी, सिद्धा नामक स्त्री, भारद्वाज की कन्या श्रुतावती ,महात्मा शांडिल्य की कन्या जिसका नाम श्रीमती था। वेदाध्ययन में दिन-रात अभ्यास करती थी। सुलभा की तरह घटोत्कच पत्नी मोरवी ने प्रतिज्ञा की थी कि जो उन्हें शास्त्रार्थ और बाहुबल में पराजित करेगा वह उसी से विवाह करेंगी। शर्तानुसार घटोत्कच दोनों क्षेत्रों में मोरवी को पराजित कर उससे विवाह करते हैं। स्पष्ट है न केवल महाभारत अपितू उसके बाद के काल तक भी उक्त अधिकार नारी जाति को प्राप्त थे। मंडन मिश्र और शंकराचार्य के बीच हुए शास्त्रार्थ की मध्यस्थता मंडन मिश्र की पत्नी भारती ने की थी भारती देवी छह शास्त्रों व छह अंगों सहित चारों वेदों व संपूर्ण काव्यादि ग्रंथों को जानती थी ऐसा कोई विषय ना था जिसका उसे ज्ञान न हो। 23 शास्त्रार्थ में मंडनमिश्र के हार जाने पर भारती ने शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित किया था।

क्रमश ....

द्विदिवसीय आर्य/आर्या प्रशिक्षण के बाद सत्रार्थियों के अनुभव

पहली बार अपनी इस छोटे से जीवन में एक सरल भाषा में समझाया जाने वाले सत्र में हिस्सा मिला। युवाओं को अपने साथ जोड़ना और उनके विचार लेना अच्छा लगा। युवाओं के ऊपर जो जिम्मेदारी है उसे बताना। हमारा क्या कर्त्तव्य होना चाहिए अपने देश के प्रति, परिवार के प्रति और स्वयं के प्रति उसका अनुभव हुआ।

ऐसे सत्र हर विद्यालय में होना चाहिए। हर विश्वविद्यालय में होना चाहिए। धन्यवाद जी!

नाम : अविराज पंवार, आयु : 18 वर्ष, योग्यता : बी.ए., कार्य : छात्र, पता : बुढ़ाना, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश।

मानव जीवन में राष्ट्र सर्वोपरि हैं अपने राष्ट्र की रक्षा करना मानव का परम धर्म है। वैदिक मार्ग पर चलना ही मानव का धर्म है। हमें जाति बन्धनों से अपने आप को मुक्त करना ही है तथा संगठित होकर अपने राष्ट्रकी रक्षा करने का सतत् रूप से प्रयास करना है।

नाम : डॉ. देशराज सिंह, आयु : 62 वर्ष, योग्यता : एम.ए., बी.ऐड, कार्य : प्रधानाचार्य, पता : बड़ौदा, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश।

आर्य निर्माणशाला में विभिन्न स्थानों पर निर्मात्री सभा के आचार्यों द्वारा आर्य व आर्या निर्माण

स्वामी व प्रकाशक आचार्य हनुमत्प्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।